अध्यापक नहीं, सहायक – एक अनुभव

रेनू उपाध्याय

वर्ष 2020 हम सभी के लिए चुनौतीपूर्ण रहा और उसे भुलाना लगभग असम्भव है। कोविड-19 का अनुभव बताता है कि परिस्थितियाँ कभी भी एकदम अचानक बदल सकती हैं। कोरोना वायरस से जब हमारे देश में भी लॉकडाउन की प्रक्रिया शुरू हुई तो विद्यालय, यातायात, बाज़ार – सब बन्द हो गए। बच्चों तक हमारी पहुँच केवल ऑनलाइन काम देने तक ही सीमित रह गई थी। ऐसे में 16 अप्रैल 2020 को सृजन समूह का गठन हुआ, जिससे जुड़कर सीखने व स्वयं को समझने के कई अवसर प्राप्त हुए। साथ ही, स्वयं के काम व तरीकों के आकलन का मौका भी मिला।

हम ज़्यादातर यही सोचते हैं कि 'नौकरी मिल गई, अब पढ़कर क्या करना है'। नौकरी मिलने तक पढ़ना, और वह भी केवल पाठ्यपुस्तकों तक ही सीमित था। इसके अतिरिक्त थोड़ा-बहुत अखबार या कहानियाँ पढ़ लीं, बस। लेकिन सृजन समूह से जुड़कर जाना कि एक अध्यापक के लिए लगातार पढ़ना कितना ज़रूरी होता है। जैसे एक बीज को पेड़ बनने के लिए मिट्टी, हवा, पानी, खाद, रोशनी आदि की ज़रूरत होती है, वैसे ही किताबें और लेख एक शिक्षक की खुराक हैं।

हम कहानियाँ, अखबार आदि रोज़ ज़रूर पढ़ते हैं पर अपने व्यवसाय से जुड़ी सामग्री को ढूँढ़ने और पढ़ने से हम अक्सर कतरा जाते हैं। सृजन समूह ने हमें यह समझने का मौका

दिया। विश्व में तरह-तरह का साहित्य मौजूद है लेकिन हमारे काम के अनुसार, हमारी आवश्यकता की सामग्री को उपलब्ध कराने का काम अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन के सदस्यों ने किया। यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य था जिसे बखूबी निभाया गया। इस दौरान हमने कहानियाँ, डायरी लेखन, आत्मकथा, साक्षात्कार, भ्रमण व अन्य कई तरह की रचनाओं को पढ़ा। प्रत्येक रचना अपने आप में अलग थी। इस सफर में विभिन्न प्रकार की रचनाओं का मैंने अपने कार्य क्षेत्र में कैसे प्रयोग किया, क्या-क्या जाना-समझा – उसे यहाँ साझा कर रही हूँ।

बच्चों की समस्याओं की समझ

आम तौर पर शिक्षक और विद्यार्थी का रिश्ता पढ़ने-पढ़ाने तक ही सीमित रहता है। विद्यार्थी के विद्यालय न आने या विषय समझ में न आने पर हम कभी उनके कारणों को गहराई से जानने का प्रयास नहीं करते। सृजन समूह में एक रचना साझा की गई थी 'गरीबी रेखा के नीचे' जिसमें लेखक और उनके मित्र गरीबी रेखा से नीचे गुज़र-बसर कर रहे लोगों के जीवन के बारे में जानने के लिए वैसी ही निर्धारित आय पर अपना जीवन जीकर देखते हैं। नतीजतन, उन्हें हर कदम पर बहुत सोच-विचार और बहुत-से समझौते करने पड़ते हैं। खाने-पहनने से लेकर दैनिक जीवन में प्रयोग आने वाली समस्त वस्तुओं तक। रचना बताती है कि वे सभी बच्चे जो हमारे पास पढ़ने आते हैं, लगभग इसी आय वर्ग के होते हैं, और वे सब विद्यालय आने से पूर्व ऐसी ही अनेकों समस्याओं से जूझ रहे होते हैं। इसे पढ़ने के बाद समझ में आया कि अध्यापक को बच्चों के साथ काम करते समय उनके अभिभावक बनकर भी सोचना पड़ेगा, उनकी परेशानियों को समझना होगा और फिर पढ़ाना होगा।

इस समूह से जुड़ने के बाद मैंने कक्षा में अधिकतर अनुपस्थित रहने वाले छात्रों की समस्याओं को समझकर उनका निराकरण करने के प्रयास किए। एक बच्चे के घर में

माता-पिता के बीच शराब के कारण रोज़ झगड़ा होता था। मुझे उसके साथ अपने व्यवहार को पूरी तरह से बदलना पड़ा। उसे छोटे-छोटे कामों पर प्रोत्साहित किया और यही प्रोत्साहन उसके नियमित रूप से विद्यालय आने में काम आया।

एक बच्ची के घर की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। उससे कहा कि वह अपनी किसी भी आवश्यकता के लिए घर पर न कहकर, अपनी ज़रूरत हमसे साझा करे।

कक्षा-शिक्षण में बदलाव

परम्परागत तरीके से हटकर शिक्षा को कैसे रुचिकर बनाना है, यह सृजन समूह से सीखने को मिला। हमने समूह में ऐसे शिक्षकों के बारे में कई आलेख पढ़े जिन्होंने अपने आसपास के परिवेश की समझ के आधार पर विद्यालय आए बच्चों को नकारने की बजाय, उनकी समझ को बड़ी खूबसूरती के साथ विषय से जोड़कर पढ़ाया। बच्चे की भावनाओं का सम्मान करते हुए उनकी बातों को विषय के साथ जोड़ा। इसके अन्तर्गत 'खूबसूरती और सच' लेख पर बात करें तो हम देखते हैं कि दादा जी द्वारा दिन व रात के बनने को कहानी के रूप में बच्चे को समझाया गया, तो अध्यापिका ने भी दादा जी की बातों को विज्ञान से बड़ी खूबसूरती से जोड़ा।

'शंकर जी का पसीना' और 'जंगल का बनना' में बच्चे द्वारा समाज से लाए ज्ञान का इस्तेमाल करते हुए अध्यापिका ने बातचीत द्वारा बच्चों को स्वयं से समझने के अवसर प्रदान किए। आपसी चर्चा द्वारा वे समझ पाए कि जंगल शंकर जी के पसीने से नहीं, बल्कि बीजों के बिखरने से बनते हैं। 'व्याकरण की घण्टी' लेख हमारे सामने दो तरह की शिक्षण प्रणालियों को प्रस्तुत करता है। पहली सिर्फ सूचनापरक थी, पता नहीं चल रहा था कि बच्चे क्या और कितना ग्रहण कर रहे हैं। दूसरे तरीके में अध्यापिका ने विशेषण की समझ विकसित करने के लिए बच्चों के अनुभवों को प्राथमिकता दी और विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा विषय तक पहुँचाया। बच्चों को मुक्त अभिव्यक्ति के बहुत सारे अवसर दिए। इस तरह के आलेख पढ़कर मुझे अपनी शिक्षण पद्धतियों पर सोच-विचार और सुधार के अवसर प्राप्त हुए। मैंने कक्षा-कक्ष में ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास किया कि बच्चे अपने ज्ञान के साथ-साथ खुद को महत्वपूर्ण समझें और अपनी बातें एवं अनुभव साझा करें।

किताबों का महत्व

दिवास्वप्न, बच्चों से बातचीत, पढ़ना और पढ़ाई, नीलबाग का स्कूल आदि किताबों को पढ़ने के बाद जाना कि अभी हम बहुत पीछे हैं। एक अध्यापक को बच्चों के साथ जुड़ने के लिए कितने विभिन्न तरीकों से सोचना

पड़ता है। उनके अन्दर पढ़ने की भावना विकसित करने के लिए किस तरह से विद्यालय में व्यवस्थाएँ बनानी ज़रूरी हैं, बच्चों को स्वयं से कैसे जोड़ना है – इन सब के बारे में हमारी समझ बनाने में किताबों ने बहुत मदद की। इन किताबों के ज़रिए जाना कि अध्यापक और अभिभावक के रूप में हम कहाँ गलतियाँ करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण है कि अध्यापक को अध्ययन करते रहना चाहिए ताकि अपने काम को परखने के साथ-साथ उसमें सुधार कर पाए।

अभिभावकों को समझना

हम बच्चों के विद्यालय न आने पर उनके अभिभावकों को डाँटते हैं, लेकिन शायद ही कभी यह जानने का प्रयास करते हैं कि ऐसी कौन-सी समस्याएँ और मजबूरियाँ हैं जिनके कारण वे अपने बच्चों पर ध्यान नहीं दे पा रहे हैं। हमने ऐसे आलेख भी पढ़े जिसमें अध्यापिका द्वारा बच्चे के स्कूल न आने पर अभिभावकों को दोष दिया जा रहा था। उस पर लेखिका ने कहा, "क्या कभी आपने उनके अभिभावकों की परेशानी जानने का प्रयास किया?" यह वाक्य मुझ पर बहुत गहराई तक असर कर गया। और सोचने पर विवश कर दिया कि जो अभिभावक दो वक्त की रोटी की जुगाड़ के लिए सुबह 7 बजे से रात 8 बजे तक काम कर रहे हैं, उनसे शिकायत करने का क्या अर्थ है। और क्या यह हमारी संवेदनहीनता नहीं दिखाता?

पुस्तकों के चयन का नज़रिया

इस दौरान बहुत सारे आलेखों को पढ़ने के बाद जाना कि कक्षा-कक्षा में अलग-अलग समझ रखने वाले बच्चे होते हैं। उन्हें केवल पाठ्यपुस्तक या एक तरह की किताबों से पढ़ाना सम्भव नहीं है। पुस्तकालय में जो किताबें उपलब्ध भी हैं, उनमें से ज़्यादातर बच्चों के अनुरूप नहीं हैं। कुछ कहानियाँ बहुत बड़ी व नीरस हैं तो कुछ में चित्रों का अभाव है जिन्हें पढ़ने में बच्चे रुचि नहीं दिखाते। सृजन समूह से जुड़ने के बाद बरखा सीरीज़ व *एकलव्य* प्रकाशन की किताबों के साथ काम किया तो पाया कि बच्चों में काफी अन्तर आया है। कक्षा के कई बच्चे जो पहले केवल अक्षरों की समझ रखते थे, आज बहुत अच्छी तरह से पढ़ना सीख गए हैं।

मिड-डे मील पर बदला नज़रिया

"वे स्कूल क्यों आते हैं?" आलेख पढ़ने से पूर्व मेरा मानना था कि मिड-डे मील पढ़ाई में बहुत बड़ा बाधक है। शिक्षकों का बहुत सारा समय इससे सम्बन्धित डाक बनाने में व्यर्थ चला जाता है। बच्चों का भी पूरा ध्यान किचन की तरफ ही लगा रहता है। किन्तु जब सृजन समूह में इस लेख से सम्बन्धित प्रतिक्रियाओं को पढ़ा व

चर्चा सुनी तो लगा कि अपनी सोच को बदलना होगा। जो बच्चे हमारे पास आते हैं, उनके घर की आर्थिक स्थिति बिलकुल भी ठीक नहीं रहती और शायद उन्हें समय पर भरपेट खाना भी न मिलता हो। इसलिए वे बड़ी आस के साथ स्कूल में दिन के भोजन की राह देखते हैं। भूख से ग्रस्त बच्चे भला पढ़ाई में ध्यान कैसे लगा सकते हैं।

स्वयं का आकलन व महत्व

समूह में साझा कई आलेख पढ़ने के बाद लगता है कि हमारी शिक्षण पद्धति, आकलन की समझ व विद्यालय में कार्य करने के तरीके कितने गलत हैं। 'जूलिया वेबर की डायरी' हमें बताती है कि अध्यापक के अन्दर यदि उत्साह है तो महंगे भवन, लैब, स्मार्टफोन आदि के बिना भी कुशल अध्यापन कार्य किया जा सकता है। अपने लक्ष्य निर्धारित कर प्रत्येक छात्र की पृष्ठभूमि पता करके अपनी कार्य-योजना बनाई जा सकती है।

इस दौरान हमने यह भी सीखा कि विद्यालय केवल पाठ्यक्रम ही नहीं सिखाता, बल्कि कई और गुणों का भी विकास करता है। सी.एन. सुब्रमण्यम जी का लेख 'बच्चों को फेल न किया तो क्या किया?' परीक्षा और मूल्यांकन के बारे में हमारी समझ एवं धारणाओं जैसे बच्चे को फेल न किया जाए तो वे नई कक्षा में क्या करेंगे, वे अन्य बच्चों से पिछड़ जाएँगे, आदि का बड़े तर्कपूर्ण ढंग से खण्डन करता है। यह लेख बताता है कि फेल होना बच्चों के लिए कतई प्रेरणा-स्रोत नहीं हो सकता, बल्कि उन्हें अत्यन्त हतोत्साहित करता है। यह लेख मूल्यांकन व फेल करने में अन्तर बताता है – मूल्यांकन करने का तात्पर्य बच्चों की क्षमता को जानना है जबकि फेल करना एक प्रताड़ना है।

'शिक्षक पढ़ेगा नहीं तो बढ़ेगा नहीं' आलेख हमें बताता है कि शिक्षक के लिए स्वाध्याय कितना ज़रूरी है। यदि हमें अपने विषय का पूर्ण ज्ञान चाहिए तो गहराई से पढ़ना होगा। आलेख पर चर्चा के दौरान अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन के साथियों के प्रश्नों ने मुझे अपने अन्दर झांकने को विवश किया कि शिक्षक समुदाय स्वाध्याय के लिए अभिप्रेरित क्यों नहीं हो पाता। यह वास्तव में चर्चा का विषय है। एक अध्यापक होने के बाद भी हम पढ़ने से दूर क्यों भागते हैं? "क्या शिक्षक एक पेशेवर है?" लेख ने समझाया कि हम जिस 'पेशेवर' शब्द से स्वयं को जोड़ने से बचते हैं, उसका वास्तविक अर्थ है कि हमारे पास अपने प्रोफेशन के अनुरूप क्षमताएँ होनी चाहिए। इस तरह के आलेखों को पढ़ने के बाद समझ में आता है कि अभी शिक्षा प्रणाली में कितने ही सुधारों की ज़रूरत और सम्भावना है।

अध्यापन एक ऐसा कार्य है जहाँ समय-समय पर अपने आकलन की आवश्यकता पड़ती है, पर इस तरफ हम नहीं के बराबर ध्यान देते हैं और अपनी ताकत और कमियों को समझना नहीं चाहते हैं। सर्वप्रथम तो हमें इन्हीं से रूबरू होना होगा।

कार्य-योजना का महत्व

अधिकांशतः हम बगैर किसी योजना के शिक्षण कार्य शुरू कर देते हैं। कक्षा में गए, पाठ खोला, पढ़ाया और प्रश्नों के उत्तर श्यामपट पर लिखना शुरू कर दिए। लेकिन शिक्षक समूह के निर्माण के बाद मुझे योजनाबद्ध तरीके से तैयार की गई पाठ-योजना का महत्व समझ में आया। इस समूह में कहानी व कविता साझा की जातीं और फिर शिक्षकों द्वारा उस पाठ पर कार्य-योजना तैयार की जाती थी। हममें से ही कोई एक पाठ पर आधारित प्रश्न, गतिविधि आदि तैयार करता था। इसी तैयारी के आधार पर हम कक्षा-कक्ष में जाते थे और बाद में अपने कक्षा-अनुभवों को समूह में साझा करते थे। योजना के तहत काम करते हुए हमने पाया कि यदि पाठ-योजना बनाकर पढ़ाया जाए तो बच्चे बहुत सरलता से समझ जाते हैं। योजना इस तरह से बनाई जाती थी कि बच्चों को अधिक-से-अधिक बातचीत व अभिव्यक्ति के अवसर मिलें। इसके तहत हमने जितने भी पाठों पर काम किया, उन सभी में परिणाम हमारी आशा से कहीं बेहतर थे।

निष्कर्ष

सृजन समूह ने एक शिक्षक व अभिभावक, दोनों ही रूपों में स्वयं को परखने का एक अवसर प्रदान किया। आज समूह से जुड़ा प्रत्येक सदस्य अपने काम के तरीकों में बहुत सारे बदलाव महसूस करता है। मुझे लगता है कि हम बच्चों को पहले की तुलना में खुद के ज़्यादा करीब पाते हैं। उनकी भावनाओं, भाषा व संस्कृति का सम्मान करते हैं। यह इसलिए हो पाया क्योंकि समूह ने हमें अपने कार्यों में बदलाव लाने की एक दिशा दी। आज हम सभी कक्षा में एक अध्यापक की भूमिका में नहीं, बल्कि एक सहायक के रूप में व्यवहार करते हैं। बच्चों के प्रश्न हमारे प्रश्नों से ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं। उनकी समस्याओं को समझकर हम उनके साथ मिलकर काम करने का प्रयास करते हैं।

रेनू उपाध्याय: राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, धुसरा, सितारगंज (ऊधम सिंह नगर) में सहायक अध्यापिका हैं। पढ़ने-लिखने व बच्चों के शिक्षण में गहरी रुचि।

सभी चित्र: कश्वी: डिज़ाइन प्रैक्टिशनर बनने की इच्छुक हैं व वर्तमान में बैंगलोर से इसकी पढ़ाई कर रही हैं। मूल रूप से भोपाल की रहने वाली कश्वी अपनी रचनात्मकता का उपयोग समाज के लाभ के लिए करना चाहती हैं।